वन नीति मसौदे से उपजी आशंकाएं

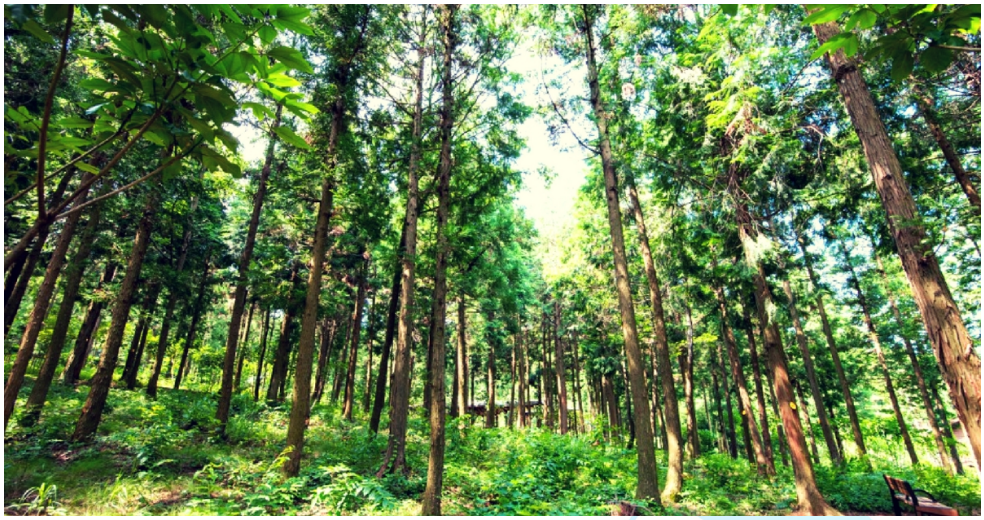

सभी सरकारी नीतियां किसी न किसी प्रकार के लक्ष्य, प्राथमिकताओं और रणनीतियों को लेकर चलती हैं। बदलते दौर के साथ-साथ इन्हें भी संशोधित करने की आवश्यकता होती है। हमारी वन नीति की यही स्थिति है। इसमें पिछला संशोधन 1988 में हुआ था। सन् 2018 में वन नीति का जो मसौदा तैयार किया गया है, वह पिछले 30 वर्षों के दौरान आए परिवर्तनों को नजरअंदाज करता जान पड़ता है।

भारत की लगभग 25 करोड़ आबादी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से वन पर निर्भर करती है। लकड़ी, चारा, बाँस, बीड़ी पत्ते के अलावा कई ऐसे वनोपज हैं, जो लोगों की आजीविका का साधन हैं। इमारती लकड़ी सरकारी खजाने में वृद्धि करती है। वन, जलधाराओं के प्रवाह को सुगम बनाते हैं, और गाद को संरक्षण देते हैं। इससे जल के किनारे बसने वाले समुदायों को बहुत लाभ मिलता है। वैश्विक रूप से ये कार्बन के अवशोषण के द्वारा पारिस्थितिकी तंत्र को भी नियंत्रित करते हैं। अतः वन नीति का निर्धारण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि वह वांछित को प्राथमिकता से लाभ पहुँचाए। कहाँ और कैसे का भी ध्यान रखा जाए। इसके दूसरे पक्ष में वन भूमि का खनन आदि गतिविधियों में उपयोग के निर्णय को देखा जाना चाहिए।

1988 से पूर्व की वन नीति

औपनिवेशिक काल की वन नीति का उद्देश्य, सरकार को अधिक से अधिक लाभ पहुँचाने का हुआ करता था। दुर्भाग्य यह है कि स्वतंत्रता के पश्चात् भी वनों को उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराने का साधन मात्र समझा गया। वनवासियों को श्रमिक ही समझा गया।

1988 में वन नीति की पुनः समीक्षा के साथ वन की भूमिका को जलवायु संरक्षक की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाने लगा। वनोपज पर वनवासियों का पहला अधिकार माना जाने लगा। वनों के संरक्षण में जनता की भूमिका को महत्वपूर्ण माना गया।

1988 के बाद की स्थिति

1990 में संयुक्त वन प्रबंधन ने वनों में लोगों की भागीदारी बढ़ाने के लिए ग्रामीण वन समुदायों का निर्माण तो किया, परन्तु उन्हें किसी प्रकार के अधिकार नहीं दिए। दान राशि से पौधारोपण किया जाने लगा।

2006 के वनाधिकार कानून ने स्थानीय वन समुदायों को वन से संबंधित अधिकार प्रदान किया। महाराष्ट्र और ओड़ीशा में अनेक समुदाय इस अधिकार का इस्तेमाल कर रहे हैं।

2018 की वन नीति का मसौदा

वन विकास निगम ने वन भूमि पर पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप के अंतर्गत कार्पोरेट निवेश करने का निर्णय लिया है।

अगर पूर्व की वन नीतियों के अनुसार वन को उत्पादकता से ही जोड़कर देखा जाने लगा जाए, तो जिस प्रकार प्राकृतिक ओक के वनों का स्थान देवदार ने, साल के वनों का स्थान सागौन ने और बारहमासी वनों का स्थान यूकेलिप्टस और एकेसिया ने ले लिया है, उसी प्रकार प्राइवेट-पब्लिक पार्टनरशिप से वनों के नाश की ही अधिक संभावना दिखाई देती है। अंततः कार्पोरेट जगत तो अपने लाभ की ही सोचेगा।

इस मसौदे में स्थानीय वन समुदायों को कोई खास अधिकार नहीं दिए गए हैं। ग्राम सभा और संयुक्त वन प्रबंधन समितियों के बीच तालमेल सुनिश्चित करने का प्रावधान एक उम्मीद जगाता है।

पेरिस समझौता और कैम्पा

2015 में हुए पेरिस समझौते में भारत ने 3 अरब टन कार्बन डाइ ऑक्साइड को कम करने की प्रतिबद्धता दिखाई थी। इसका बहुत-सा दारोमदार वनों पर है। कार्बन का नाश करने वाले पेड़ों के कारण वनों को प्राथमिकता देनी ही होगी। कैम्पा या कम्पनसेटरी अफॉरसटेशन फंड मेनेजमेंट एण्ड प्लानिंग अथॉरिटी अधिनियम और हाल ही में जारी किए गए अन्य नियम राष्ट्रीय लक्ष्यों की पूर्ति के लिए राज्य प्रबंधित वानिकी पर वापस आने के सरकार के इरादे की ओर इंगित कर रहे हैं। इससे कार्बन के लक्ष्य की पूर्ति और वन-प्रबंधन में विकेन्द्रीकरण नहीं हो सकेगा।

'द हिन्दू' में प्रकाशित शरत्चन्द्र लेले के लेख पर आधारित।